एक साहित्यिक की डायरी (तीसरा क्षण)- मुक्तिबोध

डॉ प्रशांत गौरव,
सहायक प्राध्यापक,
हिंदी विभाग, गोस्सनर कॉलेज, रांची।

'एक साहित्यिक की डायरी' कोई डायरी नहीं है। ललित निबन्ध है, विचार-प्रधान ललित निबन्ध। डायरी का एक फार्म (रूप) होता है। वह कहानी के फार्म में, उपन्यास के फार्म में, नाटक के फार्म में, एकांकी के फार्म में, लघुकथा, काव्य के फार्म में, किसी भी विधा के रूप में हो सकता है। 'तीसरा क्षण' मुक्तिबोध के काव्य-सृजन का साहित्यिक सिद्धांत दर्शन है। यह विचार-प्रधान निबन्ध है। लेकिन निबन्ध के फार्म में भी यह निबन्ध नहीं है। मुक्तिबोध का यह ऐसा निबन्ध है, जिसे निबन्ध के फार्म को ध्वस्त करके नए तरीके से लिखा गया है। मुक्तिबोध और निराला हिन्दी भाषा के साहित्य में नया फार्म सृजित करने वाले क्रांतिकारी कवि रहे हैं। निराला 'छायावाद' के कवि थे। मुक्तिबोध 'तारसप्तक' के प्रगतिशील कवि हैं। मुक्तिबोध की कविताएँ, उनके निबन्ध, उनकी कहानियाँ और उनकी आलोचना 'विचार' के कारण सामान्य पाठकों को जटिल लगती है। उनकी कविता में व्याप्त और अर्न्तव्याप्त सृजन-कौशल वैयक्तिक है, लेकिन व्यक्तिवादी नहीं, प्रयोग है, लेकिन प्रयोगवाद नहीं, यथार्थ है, लेकिन शुष्क, नीरस शब्दबोध का विवेक-शून्य अनर्गल सैद्धान्तिक प्रलाप का प्रगतिवादी दर्शन नहीं।

मुक्तिबोध के काव्य-सृजन अथवा साहित्य-सृजन जटिल क्यों लगते हैं, इसका उत्तर मुक्तिबाध देते हैं – "विचार उत्तेजित होकर किसी को क्रियावान् कर देते हैं। उत्तेजित विचार का क्रियावाद करना सृजन प्रक्रिया को अजटिल करता है**,** लेकिन मुक्तिबोध की सृजन प्रक्रिया ऐसी नहीं है। मुक्तिबोध में विचार शीघ्र ही संवेदना में परिणत होता है। फिर उन्हीं सम्वेदनाओं से मुक्तिबोध शब्द चित्र बनाते हैं अर्थात् विचारों की परिणति संवेदनाओं में**,** संवेदनाओं की परिणति चित्र में - यही सृजन प्रक्रिया है मुक्तिबोध के काव्य-सृजन की**,** इसलिए मुक्तिबोध का सृजन उलझा हुआ**,** जटिल और सहज सम्प्रेषणीय नहीं है।"[1] इस निबन्ध की यह प्रथम मुख्य बात है।

मुक्तिबोध की दूसरी स्थापना काव्य या साहित्य के सौन्दर्य बोध को लेकर है। काव्य का सौन्दर्य रस है क्योंकि यही काव्य की आत्मा है। मुक्तिबोध का 'तीसरा क्षण' निबन्ध सौन्दर्य की निरूपण विधि को सैद्धान्तिक दर्शन में यों कहता है -- "किसी वस्तु और दृश्य या

भाव से मनुष्य जब एकाकार हो जाता है तब सौन्दर्य बोध होता है। सब्जेक्ट और आब्जेक्ट, वस्तु और उसका दर्शन इन दो पृथक तत्वों का भेद मिटाकर जब सब्जेक्ट आब्जेक्ट से तादात्म्य प्राप्त कर लेता है तब सौन्दर्य भावना उद्‌बुद्ध होता है।''[2] सौन्दर्य का यह साहित्यिक सिद्धांत दर्शन मुक्तिबोध ने वार्तालाप विधि से स्थापित किया है। वार्तालाप करने वाले उनके मित्र केशव हैं। केशव एक गंभीर, रहस्यात्मक बालवृद्ध ज्ञान-सम्पन्न मित्र हैं, मुक्तिबोध के। केशव काल्पनिक मनुष्य मित्र है। निबन्ध को निबन्ध बनाते हुए मुक्तिबोध ने कल्पना से एक मनुष्य मित्र खड़ा किया है। उसको अस्तित्व दिया है। मुक्तिबोध का मित्र केशव मुक्तिबोध के साथ स्कूली जीवन से ही जंगल-जंगल, पहाड़-पहाड़, नदी-नदी यायावर की तरह, निरूद्देश्य घूमा करता। केशव गंभीर था, कम बोलता था, लेकिन जानकारी बहुत थी। वह योगाभ्यास नहीं करता, लेकिन हठयोग की बातें जानता था। केशव के लिए मुक्तिबोध ने एक फंतासी सृजित किया। फंतासी का प्रतीकार्थ अंधविश्वास की खाल छुए बिना अंधविश्वास को तार-तार करता है। इसमें भी सृजन सौन्दर्य है। यथार्थ निरूपण की साहित्यिक विधि है फंतासी। पहली फंतासी का साहित्यिक सौन्दर्य भाषा में यों है -- "मुझे लगता है भूमि के गर्भ में कोई प्राचीन सरोवर है। उसके किनारे पर डरावने घाट, आतंककारी देवमूर्तियाँ और रहस्यपूर्ण गर्भकक्षों वाले पुराने मंदिर हैं। इतिहास ने इन सबको दबा दिया मिट्टी की तह पर, परतों पर परतें, चट्टानों पर चट्टाने छा गयीं। सारा दृश्य भूमि में गड़ गया, अदृश्य हो गया। और उसके स्थान पर यूकैलिप्टस के नए बिलायती पेड़ लगा दिए गए। बंगले बना दिए गए। चमकदार कपड़े पहने हुई खूबसूरत लड़कियाँ घूमने लगीं। और उन्हीं किसी बंगलों में रहने लगा मेरा मित्र केशव जिसने शायद पिछले जन्म में या उसके भी पूर्व के जन्म में उसी भूमि के गर्भस्थ सरोवर का जल पिया होगा, वहाँ विचरण किया होगा।''[3] केशव की अप्रत्याशित गंभीरता, रहस्यात्मक ज्ञान-प्रतीति का कारण यह हो सकता है। मुक्तिबोध भूमि के गर्भ में प्राचीन सरोवर, आतंककारी देवमूर्तियाँ, डरावने घाट, पुराने मंदिर की कल्पना क्यों करते हैं? उनकी कल्पना में वियावान; उजाड़ खंडहर, डरावने रहस्य लोक, अंधेरा बार-बार क्यों आता है? इसलिए कि रहस्यवादी काव्य प्रवित्तियों को फंतासी से ध्वस्त करते हैं। मनुष्य के व्यक्तित्व में गहरा रहस्य है। मनुष्य अपने गहरे रहस्य के सहारे गंभीरता की ढाल ओढ़कर आध्यात्मिक प्रवृतियों से अंधविश्वास फैलाकर प्रगतिशील विचारों के प्रसार में बाधक बनता है। प्रगतिशील विचारों के बाधक हैं धर्म, अंधविश्वास, साहित्य का रहस्यवाद, भाववादी प्रवित्तियाँ।

मुक्तिबोध सच्चे मार्क्सवादी रहे हैं। गैर मार्क्सवादी भावोन्मुख विचारों से कभी समझौता नहीं करता। महात्मा गाँधी भारत के सबसे महान् नेता रहे हैं। उनके विचार विमर्श के योग्य हैं। न केवल कांग्रेसी, बल्कि कांग्रेसी ने तो सर्वाधिक कम ही गाँधी के विचारों का

अनुसरण किया है, पर गाँधी के विचार को वाणी में, भाषा में, व्यक्तित्व और आचरण के बाहर गाँधीवाद का बखान करते नहीं थकते। मुक्तिबोध गाँधी के विचार को नकारते हैं। इस निबन्ध में नकार का स्वर बहुत तीखा नहीं है लेकिन संक्षेप में बस इतना कहा गया है कि गाँधी की भावुकतावादी कर्म की प्रवृति ने बौद्धिक प्रवृति को दबा दिया है। सैद्धान्तिक रूप से गाँधीवाद की आलोचना बड़ी सटीक है। बौद्धिकता में प्रश्न होता है, उसका विश्लेषण होता है और तब निष्कर्ष होता है। बौद्धिकता मार्क्सवाद में है, जिसकी प्रक्रिया है थीसिस, ऐंटी थीसिस और सिनथीसिस। इसे सामान्य भाषा में प्रश्न, विश्लेषण ओर निष्कर्ष कहा गया है। "गाँधीवाद प्रश्न, विश्लेषण और निष्कर्ष की बौद्धिक क्रियाओं का अनादर करती है।"[4] रहस्यवाद, गाँधीवाद दोनों ही प्रवृतियाँ मुक्तिबोध के लिए बौद्धिक नहीं है।

सृजन के सौन्दर्य के सम्बन्ध में सिद्धांत निरूपण में यह कहा गया है कि वस्तु या भाव या दृश्य से मनुष्य का एकाकार हो जाना ही सौन्दर्य बोध है। मुक्तिबोध ने इस निबन्ध में सौन्दर्य को दृश्य कर दिया है। समर्थ कवि 'सौन्दर्य' का चित्र उतार देता है, उसे चाक्षुष्य कर देता है**;** जैसे निराला ने किया है। संध्या को सुन्दरी के रूप में चित्र बना दिया है, शब्द से। निराला के लिए संध्या सुन्दर नहीं है। ऐसी नारी जो मेघमय आसमान से उतर रही है। कोई शोर नहीं, कोई राग नहीं, चुप-चाप का अव्यक्त शब्द गूंज रहा है। जो अव्यक्त है, वह गूंजेगा कैसे? यह भाषा प्रयोग है। शैली का विचलन सौन्दर्य है इसमें। शैली बनती है विचलन से, विपथन से, समांतरता से, उपमा से, शब्द के अभिराम प्रयोग से, नयनाभिराम दृश्य को आत्मा में उतार कर उसे तदाकार कर लेने से। मुक्तिबोध का सौन्दर्य दर्शन सैद्धान्तिक नहीं दृश्य है, चाक्षुष्य है, शब्द चित्र है। परिवर्तनशील है। परिवर्तनशील सौन्दर्य चेतना प्रकृति का प्राकृत रूप है। कविता में सौन्दर्य का चैतन्य मानुषिक परिवर्तनशील रूप छायावाद में आया है, प्रकृति का मानवीकरण करने में। सौन्दर्य अनुभव से उतरता है। अनुभव में कल्पना के रंग होते हैं। साँझ के लिए मुक्तिबोध शब्द देते हैं -- "साँझ पानी के भीतर लटक गयी थी। संध्या तालाब में प्रवेश कर नहीं रही थी। लाल-भड़क आकाशीय वस्त्र पानी में सूख रहे थे। और मैं संध्या के इस रंगीन यौवन से उन्मत्त हो उठा था।"[5] सांझ पानी के भीतर लटक गयी थी लेकिन संध्या का तालाब में प्रवेश नहीं कर रही थी। सांझ ही पानी के भीतर लटकी हुई थी, लेकिन तालाब में प्रवेश नहीं कर रही थी। यही है विचलन शैली। काव्यात्मक सौन्दर्य। सौन्दर्य शब्द प्रयोग से फूट रहा है। सूर्य के डूबने के समय आकाश में किरणों की लालिमा रहती है। उस लाली को मुक्तिबोध आकाशीय वस्त्र कहते हैं। आकाशीय वस्त्र पानी में सूख रहे थे। पानी में वस्त्र गीला होता है कि सूखता है? लेकिन मुक्तिबोध की कल्पना में सौन्दर्याधान के लिए वस्त्र पानी में सूखता है। यहाँ भी शैली विचलन है। कहना यह है कि शब्द प्रयोग के द्वारा शैली

विचलन करके सौन्दर्य पैदा करते हैं। काव्य में भी और गद्य भाषा में भी करते हैं। जो शाम तालाब के जल में नहीं प्रवेश कर पायी थी, वही शाम अंधेरा ओढ़कर जो रंगीन थी मुक्तिबोध के भीतर समा गयी है। मुक्तिबोध को बदलती प्राकृतिक सुषमा एक जादुई रंगीन शक्ति मालूम हुई। उन्हें लगा कि यह सौन्दर्य सुकुमार ज्वाला ग्राही जादुई शक्ति है। एक बात और, वह यह कि मुक्तिबोध का सौन्दर्य चित्र हृदयग्राही है। लेकिन स्वयं से स्वयं को डराने वाला है। डर मुक्तिबोध को अंधेरे से भी लगता है। मुक्तिबोध में और निराला में अंधेरा और प्रकाश है। निराला में तो धरती और आकाश भी है, राग और विराग भी है, शोर और स्तब्धता भी है। मुक्तिबोध में अंधेरा है, वियावान हवेली है, उजाड़, आतंककारी डरावना काला जल है।

जो शाम मुक्तिबोध के भीतर समा गयी है, वह सुकुमार ज्वालाग्राही जादुई शाम थी, लेकिन बदल गयी। जादुई शक्ति वाली रंगीन शाम साँवली हो गयी। अंधेरे का स्तूप बनकर वृक्ष चुप-चाप खड़े हो गए। स्तब्धता छा गयी। स्तब्धता भी स्थिर नहीं रही। स्तब्धता के भीतर से एक चम्पई पीली लहर ऊँचाई पर चढ़ गयी। कॉलेज के गुम्बद पर और वृक्ष शिखरों पर लटकती हुई चाँदनी सफेद धोती सी चमकने लगी। मुक्तिबोध की शाम कोई पहाड़ी प्रदेश की नयनाभिराम शाम नहीं है। पहाड़ों की शाम की शोभा का अद्‌भुत दृश्य प्राकृतिक होता है। बिना शब्दचित्र के भी मन को बाँध लेता है। मुक्तिबोध की संध्या का सौन्दर्य निराला की तरह काल्पनिक शब्द बिम्बों की काव्यात्मक शाम है। इसके रूप में चपलता है, स्तब्धता है, चहक है, उपमित सृजित शाम है। सौन्दर्य दृष्टि में होती है, कला में फूटती है, फंतासी से निर्मित होती है और यथार्थ रूप धरकर आँखों के सामने खड़ी हो जाती है। इसे कहते हैं सृजन का सौन्दर्य।

साहित्य सृजन के मूल में है उच्छवसित भाव लहर का उद्वेलन। मुक्तिबोध की सृजन-प्रक्रिया में भी वही भावलहर है, भले ही वो विचारों के शीर्ष पर खड़े होकर प्रगतिशीलता की हाँक लगाने वाले सिद्ध साहित्यकार हों उच्छवसित भाव से ही उनका अनुभव निकलता है, जिसे काव्यानुभव कह सकते हैं। वियोगी होगा पहला कवि। आह से उपजा होगा गान। निकल कर आँखों से चुपचाप। वही होगा कविता अनजान। वाले आँसू से गीला होकर लिखने वाले सहित्य-सर्जक कवि नहीं हैं मुक्तिबोध। उच्छवसित भाव व्यक्त करते हुए उन्हें लगता है "मन एक रहस्यमय लोक है। उसमें अंधेरा है। अंधेरे में सीढ़ियाँ हैं। सीढ़ियाँ गीली हैं। सबसे निचली सीढ़ी पानी में डूबी हुई है। वहाँ अथाह काला जल है। उस अथाह जल से स्वयं को ही डर लगता है। इस अथाह काले जल में कोई बैठा है। वह शायद मैं ही हूँ। अथाह और एकदम स्याह-अंधेरे पानी की सतह पर चाँदनी का एक चमकदार पट्टा फैला हुआ है, जिसमें मेरी ही आँखें चमक रही है, मानो दो नीले मूंगिया पत्थर उदीप्त हो उठे हों।"[6] क्या फंतासी में गठित

अंधेरा, प्राचीन सरोवर, मंदिर, गीली सीढ़ियाँ, अथाह काला जल, डर स्वयं को उसमें तादात्म्य करना, स्व और वस्तु की तदाकारिता का सौन्दर्य रहस्यात्मक नहीं है? किस रहस्य को अस्वीकार करते हैं मुक्तिबोध, किस रहस्य को स्वीकार! रामविलास शर्मा ने 'नयी कविता और अस्तित्ववाद' में मुक्तिबोध को अस्तित्ववादी कहा है। लेकिन अस्तित्व तो कहीं ठहरता नहीं। जहाँ जहाँ अंधेरा है, रहस्य सृजन है, वहाँ स्वयं का अस्तित्व भी है, अंधेरे का तो अस्तित्व होता नहीं, इसलिए प्रकाश भी है। इसका तात्पर्य है कि मुक्तिबोध प्रगतिशील तो हैं, पर अस्तित्ववादी भी हैं। निश्चय ही मुक्तिबोध में अस्तित्ववाद का दर्शन भी है।

सृजन प्रक्रिया में सौन्दर्य का अस्तित्व है। काव्यशास्त्र कहता है सौन्दर्य की अनुभूति रस निष्पति दर्शक में होती है। तुलसी स्वान्तः सुखाय का निरूपण करते हैं। मुक्तिबोध के समक्ष उसके मित्र का प्रश्न है कि सृजन के सौन्दर्य की मीमांसा की राह क्या है? लेखक की हैसियत से विश्लेषण होगा कि पाठक एवं दर्शक की हैसियत से। मुक्तिबोध का स्पष्ट और चुनौतीपूर्ण उत्तर है, लेखक की हैसियत से। गोया लेखक ही सबसे पहले सौन्दर्यानुभूति करता है। बाद में पाठक और दर्शक आता है। यह बात नयी है। सही भी है। शाम के प्राकृतिक दृश्य की अनुभूति पहले मुक्तिबोध को हुई। मुक्तिबोध के सौन्दर्य निरूपण के बाद ही शब्दचित्र द्वारा और किसी को होगी - यह सत्य है।

समय, व्यक्ति और युग के अनुसार साहित्य की सृजन प्रक्रिया भिन्न-भिन्न होने को बाध्य है। साहित्यिक विधा के अनुसार भी सृजन प्रक्रिया में भिन्नता उत्पन्न होती है। निश्चय ही सौन्दर्य का रूप और वेग भी भिन्न-भिन्न होगा। सौन्दर्य की परिभाषा अव्याप्ति, अतिव्याप्ति के दोष से मुक्त होना संभव है जब सम्पूर्णता में साहित्य की सृजन प्रक्रिया की मीमांसा होगी।

मुक्तिबोध को जब सौन्दर्य की अनुभूति होती है तब कवि हृदय में वातावरण की मस्ती छाने लगती है। मुक्तिबोध लिखते हैं -- "वक्ष के रोम-रोम पुलकित हो जाते हैं। आँखों में किरणों की सुनहली धारा बहने लगती है, बाहुओं की मांसपेशियों में नशा बहने लगता है।"[7] प्राकृतिक शारीरिक आनंद हावी हो जाता है। काव्यानंद के ये संचारी भाव हैं। संचारी भाव से जो उन्मत स्फूर्ति आती है उसकी सहज शक्ति चेतना आँखों को निर्मल और दीप्त कर देती है। सौन्दर्य का स्त्रोत है 'अनुभूति', लेकिन आँखों को दीप्त और निर्मल करने का कार्य सौन्दर्य ही करता है। सौन्दर्य और कुछ नहीं प्राकृतिक दृश्य है, आँखों का विषय है। लेकिन कवि और साहित्यकार अपनी अनुभूति से, अपनी कला से, सृजन सौष्ठव से पाठक तक पहुँचा देता है। अतः सौन्दर्य दृश्य होता है, अनुभूत होता है, आनंददायक होता है, आत्मपरक नहीं, लोकपरक होता है।

अब बात करते हैं 'तीसरा क्षण' की। तीसरा क्षण की व्याख्या मुक्तिबोध का साहित्यिक दर्शन है। मुक्तिबोध मानते हैं कि कला के तीन क्षण होते हैं। कला के क्षण में भीतर बाहर कहीं भी कमजोरी का होना कला के कौशल, कला सौन्दर्य का नष्ट हो जाना है। कमजोरी कहाँ-कहाँ हो सकती है? कमजोरी हो सकती है बौद्धिक आकलन में, संवेदन क्षमता में। बौद्धिक आकलन और संवेदन क्षमता के प्रभावित होने से कृति (सृजन) प्रभावित हो जाती है। कला, चाहे काव्यकला हो अथवा साहित्य के किसी अनुशासन की कला, बल्कि काव्य-कला पर ही यह लागू होती है 'अनुभव'। जीवन के उत्कट तीव्र अनुभव का क्षण पहला क्षण है। अनुभव जैसा भी हो, उस अनुभव से अलग हो जाना। अनुभव से अलग होने में फंतासी का रूप धारण करना पड़ता है। फंतासी को शब्दबद्ध करने की प्रक्रिया का आरंभ और उसकी परिपूर्णता ही कला का तीसरा क्षण है। मुक्तिबोध के तीसरा क्षण के निरूपण सिद्धांत उसी तरह जटिल है, जैसे मुक्तिबोध की कविता है। फंतासी काल्पनिक शब्द बिम्ब है अनुभव अनुभूतियों से जन्म लेता है। कला का प्रथम क्षण है अनुभव की उत्कट तीव्रता। उसके बाद आती है फैण्टैसी या फंतासी। फैण्टैसी के बदले कल्पना कह लें, क्योंकि फैण्टैसी तो मुक्तिबोध की कला के साथ हिन्दी काव्य में प्रचलन में आया है। कल्पना को (फैण्टैसी) को रूपाकार करने के लिए उसे शब्दबद्ध करना आवश्यक है। बिना शब्दबद्ध किए उसकी अभिव्यंजित आकृति नहीं खड़ी होगी। शब्दबद्ध करने की प्रक्रिया और उसकी परिपूर्णता की गतिमानता ही तीसरा क्षण है।

प्रथम क्षण अनुभव का क्षण है। प्रथम क्षण मानसिक प्रक्रिया को आत्माभिव्यक्ति तक ले जाता है। प्रथम क्षण महत्वपूर्ण इसलिए है कि सृजन के तत्व और सृजन की दिशा का निर्धारण अनुभव अर्थात् प्रथम क्षण ही करता है। तत्व निर्धारित करने से तात्पर्य है आकार देना। आकार प्रदान करने के पश्चात् अनुभव बदल जाता है। अनुभव के बदल जाने का अर्थ है वैयक्तिक से परे हो जाना। अब आती है फैण्टैसी जो शब्दबद्ध होने की प्रक्रिया में बदलने लगती है। फैण्टैसी जब साहित्यिक कलात्मक रूप धारण कर लेती है, यही कला का परिपूर्ण क्षण है, जिसे तीसरा क्षण कहा गया है। मुक्तिबोध तीसरा क्षण के निरूपण में उलझ गए हैं। उनकी व्याख्या जटिल हो गयी है।

तीसरा क्षण कला की परिपूर्णता का क्षण है। सम्प्रेषित अभिव्यक्ति का क्षण है। इसकी पहली प्रक्रिया अनुभव की उत्कटता, दूसरा है अनुभव की उत्कटता को शब्दबद्ध करने की प्रक्रिया, जो एक साधन है फैण्टैसी। फैण्टैसी गतिमान करती है अभिव्यंजना को, आत्माभिव्यक्ति को। आत्माभिव्यक्ति संवेदित अवस्था में पहुँच कर कृति को सम्पूर्णता देती है। यही तीसरा क्षण है। मुक्तिबोध ने फैण्टैसी को कला में, सौन्दर्यानुभूति में, भाव में, कन्टेंट

में स्थापित करने के लिए जटिल विचार-सृजन किया है। मनोवैज्ञानिक तरीके से फैण्टैसी के महत्व को जरूरत से अधिक महत्व दिया है। भाषा और भाव के द्वन्द्व में फैण्टैसी को फंसा दिया है। मूल बात केवल इतना ही है कि विचार को सम्वेदना में परिणत करना और संवेदना का चित्र बनाना ही मुक्तिबोध की सृजन-प्रक्रिया है। मुक्तिबोध फैण्टैसी से आत्मकथ्य और अर्न्तकथ्य को तराशते हैं। संवेदनात्मक ज्ञान और ज्ञानात्मक संवेदना फैण्टैसी की पूंजी है जिससे आत्मचित्र गढ़ते हैं।

संदर्भ संकेत:-

1. मुक्तिबोध, गजानन माधव, एक साहित्यिक की डायरी, भारतीय ज्ञानपीठ, नयी दिल्ली, 2023 ई0, पृ. संख्या-20,
2. वही, पृ. संख्या - 02
3. वही, पृ. संख्या- 08
4. वही, पृ. संख्या- 09-10
5. वही, पृ. संख्या -10
6. वही, पृ. संख्या- 09
7. वही, पृ. संख्या -17